International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 95-97

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 95-97
© 2017
www.anantaajournal.com
Received: 26-03-2017
Accepted: 27-04-2017

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0 प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0 प्र0)

मानव के त्रिविध शरीर और चार अवस्थाएँ

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

सारांश
मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है। मानव शरीर दो तत्वों का समवाय है जिन्हें हम जड़ और चेतन के रूप में जानते हैं। चेतन तत्व को जीव या आत्मा कहा जाता है। जबकि जड़ तत्व को हम शरीर के रूप में जानते हैं। जड़ तत्वों से बने हुए मानव शरीर के तीन भेद होते हैं। 1. स्थूल, 2. सूक्ष्म और 3. कारण शरीर। मानव की चार अवस्थाओं का वर्णन शास्त्रों में किया गया है। जो निम्न है– 1. जाग्रतावस्था, 2. स्वप्नावस्था, 3. सुषुप्त्यावस्था, 4. समाधि या तुरीयावस्था। शोध– पत्र में मानव के त्रिविधि शरीर और चार अवस्थाओं का तात्विक विवेचन किया गया है।

प्रस्तावना
जड़तत्वों से बने हुए मानवीय शरीर के जो तीन भेद अध्यात्मजगत् में स्वीकार किये जाते हैं वे हैं– 1. स्थूल, 2. सूक्ष्म और 3. कारण शरीर। जब मनुष्य का सम्बन्ध स्थूलशरीर से होता है तब वह सूक्ष्मशरीर से भी जुड़ा रहता है और कारणशरीर से भी। इसका कारण स्थूल में सूक्ष्म का और सूक्ष्म में कारणशरीर का अभिव्याप्त होना है। ध्यातव्य है कि स्थूलशरीर की अवस्था में ये सूक्ष्म और कारणशरीर कथमपि दृष्टिगोचर नहीं होते है। [1] अब हम इन तीनों शरीरों के विषय में विस्तारपूर्वक विचार करते हैं।

स्थूलशरीर
अथर्ववेद के अनुसार समष्टि के निम्नलिखित 21 पदार्थ स्थूलशरीरों के सब रूपों को धारण करते हैं– शब्दादि पंचतन्मात्रा, पृथिव्यादि पंचस्थूलभूत, वागादिपंचज्ञानेन्द्रिय, पाण्यादि पंचकर्मेन्द्रिय तथा वीर्यशक्ति। [2] 'शुक्र' और 'रजः' इसके निर्माण में अनिवार्य तत्व हैं। [3] वेद में इस शरीर को सप्त इन्द्रियविवर, अष्टचक्र और नवद्वारों वाली अयोध्यापुरी के रूप में वर्णित किया गया है। [4] इसमें त्वग्, अस्थि और रूप आदि से लेकर अगणित सूक्ष्म तन्तु समाहित हैं जो कि केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से ही दृष्टव्य हैं तथा अपने कार्यव्यापार से अनुमेय हैं। जाग्रतावस्था में मनुष्य का स्थूलशरीर से विशेष सम्बन्ध रहता है। मानवीय भावों में आये हुये परिवर्तन इसके अनिवार्यतः प्रभावित करते हैं। [5] क्रोधादि विकारों की अवस्था में मुखाकृति में विपरिणाम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस शरीर को अन्नमयकोष कहते हैं।

सूक्ष्मशरीर
जैसा कि ऊपर भी लिखा जा चुका है कि स्थूलशरीर में एक सूक्ष्मशरीर भी अनिवार्यरूप से रहता है। इसका सर्गान्त तक विनाश न होने के कारण इसे अविनश्वर माना जाता है। इसके घटकों की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कतिपय विद्वान इसे 22 तो कुछ 24 और 26 तथा अन्य 17 तत्वों से समाविष्ट मानते हैं। परंच इसके निम्नलिखित सप्तदश तत्वात्मक होने में किसी की विमति नहीं है– मन, बुद्धि, पंचप्राण, ज्ञानेन्द्रियपंचक और पंचतन्मात्र। जो विचारक इन सप्तदश तत्वों से भी अधिक घटकों वाला सूक्ष्मशरीर मानते हैं वे इसमें पंचकर्मेन्द्रिय, अहंकार और अन्तःकरण को भी परिगणित कर लेते हैं। परन्तु विचार करने पर उपर्युक्त 17 तत्वों में ही सभी तत्वों का समावेश हो जाने से सूक्ष्मशरीर को 17 तत्वों वाला ही मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। तद्यथा अध्यात्मदृष्टि से यह समग्र प्रपंचात्मक भौतिक जगत् पृथिव्यादि पंचमहाभूतों का विपरिणाम है। जबकि आधुनिक विज्ञान इन तत्वों की संख्या में वृद्धि करते हुये इन्हें 92 संख्या वाला मानता है। ये सभी 92 तत्व मूलतत्व हों ऐसा अनिवार्य नहीं है, अपितु ये इन्हीं मूलतत्वों के पारस्परिक न्यूनाधिक सम्मिश्रण का परिणाम है। अतः इनकी मूल संख्या 5 ही है। ठीक यही दशा सूक्ष्मशरीर की भी है। उपर्युक्त 17 तत्वों में ही अधिकतर सभी तत्वों का समाहार हो जाता है। यदि कहें कि सूक्ष्मशरीर के घटक ये सप्तदश

तत्व भी प्रकृति की 'महद्' आदि सप्त विकृतियों से व्यतिरिक्त नहीं है, तो यह कथन अयुक्त न होगा। महर्षि स्वामी दयानन्द ने तो इसे मात्र दो भागों में विभाजित किया है– 1. भौतिक, 2. अभौतिक। भौतिक से यहाँ उपर्युक्त सप्तदशतत्वविशिष्ट सूक्ष्मशरीर और अभौतिक से जीवात्मा की गुणरूप स्वाभाविक शक्तियाँ अभिप्रेत हैं। तदनुसार यह सूक्ष्मशरीर ही मुक्तिदशा में विद्यमान रहता है। [6] स्मृति, कल्पनाशीलता, पुरातनसंस्कार आदि सभी सूक्ष्मशरीर के ही व्यापार माने जाते हैं। यह शरीर मानवीय प्रावृत्तिक सम्पादनता का विकर्षण करता है और इसी विकर्षण के फलस्वरूप सूक्ष्म से स्थूलशरीर में गति देखी जाती है। [7] सूक्ष्मशरीर कारणशरीर की अपेक्षा स्थूल होता है और भौतिक की अपेक्षा सूक्ष्म। यतः यह सर्वथा अतीन्द्रिय है इसलिए इसका भान अन्तर्मुखीवृत्ति से ही होता है। [8] पाश्चात्य मनोविज्ञान सूक्ष्मशरीर की अवधारणा को स्वीकार नहीं करता है। पुनरपि उसमें भी बहुत से ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जिनका अर्थ सूक्ष्मशरीर की कार्यवृत्तियों के अधिक समीप है। [9] इस शरीर के तीन कोष माने गये हैं। 1. प्राणमय कोष (5 प्राण + 5 उपप्राण) 2. मनोमय कोष, 3. विज्ञानमय कोष। प्राणमय कोष प्रेरणात्मक या क्रियात्मक है, मनोमय कोष ऐन्द्रिय उपलब्धि में प्रधान कारण है। बुद्धि का सम्बन्ध विज्ञानमय कोष से है जो कि निश्चयात्मक प्रवृत्तिरूप है। [10]

जब यह सूक्ष्मशरीर 'रजस्' और 'तमस्' से प्रभावित होता है तब मन और बुद्धि पर अलौकिक परतें पड़ जाती हैं। इन्हें 'विकार' कहते हैं। ये विकार जीवात्मा के द्वारा देहान्तर को प्राप्त करने पर भी साथ जाते हैं। यही कारण है कि कोई व्यक्ति किसी भयंकर रोग से पीछा छुड़ाने के लिए आत्महत्या करके भी उससे छुटकारा नहीं पाता है। वह जहाँ भी जन्म प्राप्त करता है वहाँ वह अथवा उसका परिवर्त्तित रोग उसे अवश्य प्राप्त होता है। [11]

कारणषरीर

कारणशरीर के विषय में मनीषियों का कथन है कि अवर्णनीय, अनादि, अविद्यास्वरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों शरीरों का कारणमात्र अपने ही स्वरूप की जो अज्ञानमयी सत्ता है, उसे ही कारणशरीर कहते हैं। यह जड़ कलेवर में निविष्ट रहते हुये भी सुषुप्ति की स्थिति में ही रहता है। सूक्ष्मीकरण के माध्यम से इसे जाग्रत किया जाता है। [12] यह प्रकृतिरूप होने से विभु और एक है और सभी जीवों के लिए समानरूप से प्राप्त है। यह जीवात्मा के साथ एकरस होकर विद्यमान रहता है। अतः इसे 'कारणशरीर' कहा जाता है। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि शेष बचे दो शरीर स्थूल एवं सूक्ष्म कार्यशरीर हैं जो कि बनते और बिगड़ते रहते हैं। इनमें परिवर्तन होता रहता है। जीवात्मा अपने कर्तृत्व, भोक्तृत्व और ज्ञातृत्वरूप गुणत्रय का विकास इन्हीं दोनों के माध्यम से करता है। [13] जहाँ तक कारणशरीर का प्रश्न है वह प्रकृति की सूक्ष्मतम अवस्था है जिसमें किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता है। प्रकृति की जो विकाररूपिणी अवस्था है वह सृष्टि है। इस सृष्टि में भी प्रकृति का मौलिक रूप ओतप्रोत रहता है। यह मौलिकरूप ही जीवात्मा का कारणशरीर है। यह सब जीवों का सामान्य होने से एक है। यह जीव का शरीर इसलिए कहा जाता है क्योंकि जीव इससे सूक्ष्म होने के कारण इसमें व्यापक रूप से रहता है। [14] इस शरीर में भावसम्वेदनाओं का विशाल भण्डार रहता है और यही असीम शक्ति का मूल उत्स भी है।

स्थूलशरीर के विकास के लिए जैसे– 'कर्मयोग' और सूक्ष्मशरीर की प्रगति के लिए 'ज्ञानयोग' अनिवार्यतः अपेक्षित है, वैसे ही कारणशरीर को समृद्ध बनाने के लिए 'भक्तियोग' भी उपाश्रयणीय है। स्थूलशरीर से कर्म, सूक्ष्म से विचार और कारणशरीर से भावसम्वेदनाओं का उद्गम होता है। जिन जीवों का कारणशरीर परिष्कृत होता है वे उदारचेता, सम्वेदनशील, आदर्शवादी और परमार्थीवृत्ति वाले होते हैं। भावना, आस्था, प्रेरणा, साहस, विश्वास, आदर्श जैसे तत्व इसी शरीर में उभरते हैं।

अवस्थाएँ

मानव की चार अवस्थाओं का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। 1. जाग्रतावस्था, 2. स्वप्नावस्था, 3. सुषुप्त्यवस्था, 4. समाधि या तुरीयावस्था। यहाँ हम सभी पर अतिसंक्षेप में विचार कर रहे हैं।

जाग्रतावस्था

इस अवस्था में सामान्य जीवन के क्रियाकलाप– इन्द्रिव्यापार ही प्रमुखरूप से होते हैं। प्रायः मानव जीवन का अधिकांश भाग इस अवस्था में ही व्यतीत होता है। माण्डूक्य उपनिषद् में इस अवस्था को प्रथम अवस्था के रूप में निरूपित किया गया है। उपनिषद् के ऋषि ने इस अवस्था के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही हैं–

1. 'बहिष्प्रज्ञ' अर्थात् जीवन की बाहरी ज्ञानवाली यह अवस्था है।
2. 'सप्तांग' अर्थात् इस अवस्था में जीव के सात अंग होते हैं।
3. 'एकोनविंशतिमुखः' अर्थात् इस अवस्था में जीवन के 19 मुख होते हैं।
4. 'स्थूलभुक्' अर्थात् यह अवस्था स्थूल चीजों से संयुक्त होने वाली है।
5. 'वैश्वानरः' अर्थात् यह अवस्था जीवन का अन्य प्राणियों से सम्बन्ध एकीकृत करने वाली होती है। [15]

जाग्रतावस्था का सीधा सम्बन्ध स्थूलशरीर से होता है। इस अवस्था में जीवात्मा रजोगुण के प्रभाव में रहता हुआ संसार के भोगों का रसास्वादन करता है। सभी इन्द्रियाँ इसी अवस्था में ही जीव को नानाविध विषयों का प्रत्यक्ष कराती हैं। जरा–मरण, सुख–दुःख, हानि–लाभ आदि सभी इस अवस्था की ही विविध अनुभूतियाँ हैं।

स्वप्नावस्था

स्वप्नावस्था में जीव नानाप्रकार के दृश्यों को देखता है तथा इस सुखद तथा भयानक आदि विविध आयामी दर्शन के परिणामस्वरूप उसे सुखदुःखादि की अनुभूति होती है। कुछ विचारकों के मतानुसार जीव की यह अनुभूति कर्मफल का परिणाम है। [16] कभी–कभी कुछ ऐसे दृश्य भी स्वप्न में देखने को मिलते हैं जिनका इस जन्म से प्रत्यक्षतः कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इस विषय में आचार्य शंकर का मत है कि वे दृश्य जन्मान्तरीय कर्मफल होते हैं तथा उनका सम्बन्ध लोक और परलोक दोनों से होता है। [17] इस अवस्था में जीव प्राणों को लेकर 'सम्राट्' की तरह अपने शरीर में ही विचरण करता है, शरीर से बाहर नहीं। [18] स्वप्नों की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुये उपनिषद् और वेदान्त में कहा गया है कि स्वप्न भविष्य में होने वाले शुभाशुभ परिणाम का सूचक होता है। [19] ऐतरेय आरण्यक में तो यहाँ तक लिखा मिलता है कि यदि स्वप्न में काले दाँतवाला पुरुष दिखाई पड़े तो वह मृत्यु का सूचक होता है। [20]

इस अवस्था में जीव का बाह्यशरीर से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है वह सर्वथा कर्महीन हो जाता है किन्तु आत्मा के वे उन्नीस मुख जो जाग्रतावस्था में स्थूलजगत का भोग करते हैं न कर्महीन होते हैं और न ही लुप्त। बाह्य उपकरणों की निश्चेष्टता अन्तःशक्तियों को निश्चेष्ट नहीं कर पाती है। इसी कारण जीव उन्हीं गतिशील शक्तियों द्वारा संस्काररूप जगत् का अवलोकन करता है। इसी को आचार्य शंकर ने 'वासनाकारोद्भूत' और 'अन्तःकरणवृत्याख्यान' आदि शब्दों में अभिहित किया है। [21] माण्डूक्योपनिषद् में इस अवस्था का निम्नवत् वर्णन है––

1. इस अवस्था में जीव 'अन्तःप्रज्ञ' होता है। 2. यह उसकी सप्तांग अवस्था है। 3. यहाँ वह 'एकोनविंशतिमुखः' है। 4. 'प्रविविक्तभुक्' अर्थात् जीव की यह अवस्था वासनामात्र को भोगने वाली है। 5. 'तेजसः' अर्थात् यह तेजोमयी अवस्था है।

इस अवस्था में पदार्थ के न होने पर भी उसकी सत्ता मालूम पड़ती है। [22] जाग्रतावस्था में जीव 'बहिष्प्रज्ञ' होता है और स्वप्नावस्था में 'अन्तःप्रज्ञ'। जाग्रत में जीव का सम्बन्ध बाह्यजगत से होता है किन्तु स्वप्नावस्था में उसके संस्कारमात्र होते हैं।

सुषुप्त्यवस्था

इस अवस्था के विषय में माण्डूक्योपनिषद् में लिखा है कि– सुषुप्त्यवस्था में जीव की प्रवृत्तियाँ एकीकृत हो जाती हैं। उसका न तो बाह्यपदार्थों से संसर्ग रहता है और न उसके संस्कारों से राग। उसका ज्ञान केवल व्यक्तित्व स्तर तक ही सीमित नहीं होता है। जिस प्रकार सूर्यास्त के समय सूर्य की विस्तृत किरणें सूर्य में ही विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार गाढनिद्रा के समय सभी इन्द्रियाँ और उसके कार्यव्यापार मन में अन्तर्भूत हो जाते हैं। मन के द्वारा जीवात्मा गाढनिद्रायुक्त शान्ति और सुख का अनुभव करता है। [23] जीव हृदयाकाश में विश्राम करता है। [24] सुषुप्ति में जीव पाप और पुण्यरूप कार्यों से असम्पृक्त रहता है। इस अवस्था में रजोगुण निर्बल और तमोगुण प्रबल हो जाता है।

समाधि या तुरीयावस्था

जाग्रतावस्था में चैतन्य को 'विश्व' स्वप्न में 'तैजस्' और सुषुप्ति में 'प्राज्ञ' कहा जाता है। समष्टि में उसे 'वैश्वानर', 'हिरण्यगर्भ' और 'ईश्वर' शब्दों से भी अभिहित किया जाता है। उपर्युक्त तीन अवस्थाओं से व्यतिरिक्त एक और भी अवस्था है जिसे चतुर्थ या 'तुरीयावस्था' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'समाधि' भी है। इस अवस्था में जीवात्मा परमात्मा के आवेश से भर जाता है और अपने अन्दर दिव्यचेतना का आविर्भाव होता हुआ अनुभव करता है। ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं और इसी विश्व–उद्यान में समाहित 'विराट' ब्रह्म के दर्शन होते हैं। ईश्वर–साक्षात्कार की यही अवस्था है। इस अवस्था में क्रियाशीलता सामान्यजनों जैसी ही होती है किन्तु अन्तरात्मा में परमात्मा का दिव्यप्रकाश प्रस्फुटित हो जाता है और अन्तःचेतना भी दिव्य हो जाती है। साधक को अपना जीवन जगत्स्रष्टा की धरोहर प्रतीत होने लगता है तथा प्रतिक्षण निष्काम कर्म करने की भावना बलबली हो उठती है। लोभ–मोह, हानि–लाभ आदि विकारों का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता है।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति को प्राप्त जीव की ये तीनों अवस्थायें परिणत होकर पुनः उसी में लीन हो जाती हैं। इसी को भारतीय विद्वान तुरीयावस्था कहते हैं।

संदर्भ ग्रन्थाः

1. न सदृश तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्च नैनम्।
   हृदा हृदिस्थं मनसा एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति।। श्वेताश्वतर 4/20
2. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
   वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु में।। अथर्ववेद–1/1/1
3. अस्थिकृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन्।
   रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ।। अथर्ववेद–11/8/29
4. पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।। वही – 10–8–43
   अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।। वहीं – 10–2–31, 32
5. द्र0– 'जीवात्मा', ले0पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय, पृ0 35।
6. द्र0– सत्यार्थप्रकाश, स्वामी दयानन्दकृत, पृ0 248।
7. द्र0– भारतीय मनोविज्ञान, जगदीश विद्यालंकार, पृ0 20।
8. द्र0– जीवात्मा – पृ0 236।
9. Perception is psychological function which by means of sence organs enables the organism to receive and process information on the state of and alterations in the environment. R. Droz 'Perception' In the Encyclopedia of Psychology, Vol. 2, p. 773.
10. द्र0– भारतीय मनोविज्ञान, पृ0 201।
11. द्र0– रामतीर्थ मासिक, अप्रैल 62, पृ0 416।
12. द्र0– दैनिक जागरण "अध्यात्म प्राण–ऊर्जा का वाष्पीकरण एवं सूक्ष्मीकरण" 3 मार्च 1988 का लेख।
13. द्र0– जीवात्मा, पृ0 250।
14. द्र0– वही, पृ0 213।
15. जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग् वैश्वानरः।। मा0उ0 1 पाद।
16. तस्य वैतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवतः .....।। बृहदारण्यक – 4–3–9।
17. द्र0– बृहदारण्यकोपनिषद् – शांकरभाष्य – 4–3–9।
18. द्र0– वही – 2–1–18।
19. यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्ने पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्नदर्शने।। छान्दोग्योपनिषद् – 5–2–6। सूचकश्च श्रुतेराचक्षते च तद्विदः। वेदान्तदर्शन – 3–2–4।
20. द्र0– ऐतरेयारण्यक – 3–2–4–17।
21. द्र0– बृहदारण्यकोपनिषद् – 4–3–11 पर शांकरभाष्य।
22. स यत्र प्रसुप्तस्य लोकस्य सर्वावयवतो मात्रमुपादाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्भाय स्वेनभासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपिति। बृहदारण्यक –4–3–9।
23. सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञः। मा0उ0 तृतीय पाद।
24. य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिंछेते। बृहदा0 – 2–1–17, 4–2–22।